

चतुर्थ अध्याय

तुलनात्मक अध्ययन

अहिंसा के ऊपर संदेश देते हुए दोनों विचारकों ने ही व्यक्ति को एक नई राह दिखाई है । दोनों विचारकों ने अहिंसा को बड़े ही सूक्ष्म स्तर पर समझने तथा समझाने का प्रयास किया है । दोनों विचारकों की देश काल और परिस्थितियां कुछ भी रही हो जिसमें उन्होंने हिंसा के प्रति रोष प्रकट करते हुए अहिंसा का समर्थन किया परन्तु यहाँ पर दोनों का ध्येय एक समान ही प्रतीत होता है- हिंसामुक्त व्यक्ति तथा समाज। किन्हीं भी दो वस्तु, व्यक्ति की तुलना करने पर उनमें कुछ समानता तथा कुछ असमानताएं अवश्य होती हैं, उसी प्रकार यहाँ पर भी बेशक दोनों का लक्ष्य हिंसामुक्त व्यक्ति तथा समाज की स्थापना का रहा हो परन्तु फिर भी उनकी सोच, विचार तथा कार्य करने की शैली में कुछ समानताएं तथा असमानताएं तो विद्यमान हैं ही।

4.1 महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति की अहिंसा के संदर्भ में समानताएं :

हम प्रथम यहाँ पर उनकी समानताओं का अध्ययन करते हैं । सर्वप्रथम महात्मा बुद्ध ने प्राचीन मान्यताएं व रूढ़ियों का विरोध किया जो हिंसा से भरे पड़े थे । उदाहरणस्वरूप प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म के अस्तित्व में आने से पूर्व यज्ञों के लिए पशुओं का वध करना एक सामान्य बात थी । सत्पथ ब्राह्मण में लिखा है यज्ञों के लिए आदमी, घोड़ों, बैलों, बकरियों की बलि दी जाती थी । अश्वलायन गृहसूत्र में ऐसे बहुत से यज्ञों की चर्चा है, जिनमें पशु वध होता था ।¹ जाति-प्रथा

का विशेष भोल-भाला था । प्राचीन परम्परा के कारण नीच जाति के लोग न तो वेद शिक्षा ग्रहण कर सकते थे और न ही वेद उच्चारण सुन सकते थे । इस प्रकार प्राचीन परम्परा तथा रूढ़ियों के कारण लोग हिंसा का शिकार हो रहे थे । ऐसे समय में महात्मा बुद्ध ने उन सभी प्राचीन परम्परा तथा रूढ़ियों का विरोध किया जिससे मानव या जीव पर हिंसा होती हो तथा अपने उपदेशों में इन सभी रूढ़ियों से मुक्त करते हुए, बिना ऊंच-नीच भेदभाव किए, स्त्री-पुरुष सभी को बराबर स्थान दिया । महात्मा बुद्ध के समान ही जे० कृष्णमूर्ति भी प्राचीन रूढ़ि तथा परम्पराओं का विरोध करते हैं । कृष्णमूर्ति इसे मनोवैज्ञानिक तरिके से समझाते हुए कहते हैं कि मन अपने लिए एक परिपाटी बना लेता है और इस पर सामाजिक, परिवेशगत दबावों के द्वारा संस्कारबद्धता, स्थापित ढांचों और अवरोधों के द्वारा परम्पराओं को थोप दिया जाता है, क्योंकि व्यक्ति का मन परम्परा से बंधा है और परम्परा स्मृति है और व्यक्ति जितना अधिक वृद्ध होता जाएगा ये परम्परा उतनी ही अधिक दमनकारी व हिंसक होती जाती है । क्योंकि मन परम्परा में जीता है, परम्परा से बंधकर कार्य करता है, परम्परा व रूढ़ि से बंधकर आचरण करता है । कृष्णमूर्ति इन परम्पराओं से मुक्त होकर व्यक्ति को नया होना या सर्जनशील होने को कहते हैं । क्योंकि सर्जनशील या नया होना सुखी होना है जो इस बात की प्रवाह नहीं करता कि वह धनी है या निर्धन, किस समाज या देश से है । उसका कोई नेता, कोई देवता, मन्दिर, गिरजाघर नहीं होता और इसलिए न झगड़ा होता है और न वैरभाव ।²

इसके साथ अगर हम अहिंसा के अर्थ के ऊपर चर्चा करेंगे तो पाएंगे कि सामान्यतः, अहिंसा का अर्थ होता है - किसी प्राणी की हत्या न करना । परन्तु हमने उपर्युक्त दोनों विचारकों के अध्ययन में पाया है

कि महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति दोनों ही अहिंसा के मात्र सामान्य अर्थ को ही नहीं अपितु उसके अति सूक्ष्म रूप पर चर्चा करते हैं । जहां महात्मा बुद्ध का कहना है कि प्रत्येक मानव कार्य, वाणी एवं मन से संयत रहे । कायिक दुराचार, वाणी दुराचार एवं मानसिक दुराचार छोड़कर काय, वाणी एवं मन से संयत रहे अर्थात् किसी भी व्यक्ति को मन, वचन तथा कार्य से कष्ट पहुंचाना उन्होंने हिंसा माना है, वहीं जे० कृष्णमूर्ति ने भी अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्म रूप में अध्ययन किया तथा उसका दायरा अत्यन्त विस्तृत कर दिया । जे० कृष्णमूर्ति के अनुसार हिंसा, मन, वचन तथा कर्म के द्वारा कष्ट पहुंचाने से तो होती है, इसके साथ ही किसी का अनुकरण करना, किसी सिद्धान्त या मत पर चलना, किसी ईश्वर या धर्म विशेष का पालन करना तथा उन्हीं के नियमों के अनुसार जीवनयापन करना तथा किसी व्यक्ति को देखकर विचित्र प्रकार की भावभंगिमा बनाना या विचित्र मुद्रा बनाना या व्यक्ति को उपेक्षा की भाव से देखना, ये सभी भी कृष्णमूर्ति के अनुसार हिंसा के छद्मरूप ही हैं जिन्हें शायद हर व्यक्ति जीता है तथा अपनाता है । इस प्रकार महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति दोनों विचारकों ने अहिंसा की व्याख्या उसके सामान्य अर्थ से कहीं अधिक विस्तार रूप में की है, तथा दोनों का उद्देश्य लगभग एक ही है कि व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति को मन, वचन तथा किसी प्रकार से कष्ट न पहुँचाए । इसके अतिरिक्त हिंसा की उत्पत्ति के कारणों का अध्ययन करें तो दोनों विचारकों के दृष्टिकोणों में लगभग समानता पाते हैं। । महात्मा बुद्ध अनुसार हिंसा की उत्पत्ति के कारणों में अविद्या का होना या सम्यक् दृष्टि का अभाव है जिससे व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाता है तथा सही व गलत में अन्तर नहीं कर पाता है । इसके साथ-साथ ही अहं भावना,

लोभ, ईर्ष्या-द्वेष आदि भावनाओं को भी महात्मा बुद्ध हिंसा की उत्पत्ति के कारण मानते हैं । इसी प्रकार जब हम जे० कृष्णमूर्ति के हिंसा उत्पत्ति के कारणों का अध्ययन करते हैं तो उनके भी कारण अहं की भावना, ईर्ष्या-द्वेष की भावना, लालच, क्रोध, इच्छा ये सभी महात्मा बुद्ध के विचारों के समान ही हैं । इसके साथ ही उनका आत्म अन्वेषण का विचार सम्यक् दृष्टि के समान ही प्रतीत होता है । जिस प्रकार सम्यक् दृष्टि से मनुष्य के अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है, उसी प्रकार आत्म अन्वेषण से भी व्यक्ति अपना स्वयं का अन्वेषण करके वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उपर्युक्त हिंसा उत्पत्ति के कारणों अहं, लालच, ईर्ष्या, क्रोध आदि से व्यक्ति दूर रहता है ।

महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति के द्वारा उस प्रेम को अहिंसा का एक रूप मानना जो निस्वार्थ भावना पर आधारित होता है, दोनों का प्रेम के प्रति समान दृष्टिकोण दर्शाता है । महात्मा बुद्ध प्रेम के बारे में कहते हैं कि प्रेम मिथ्या है जो स्वार्थ-पूर्ण प्रेम के लिए प्रेम से लिपटा है ।³ महात्मा बुद्ध कहते हैं कि अपने पड़ोसी से वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने आप से करते हो । प्रेम करो लेकिन हमारा प्रेम स्वस्थ हो, विवेकपूर्ण हो, महान हो, सम्पूर्ण हो । महात्मा बुद्ध ने इसी कारण अपने अनुयाइयों को बार-बार मैत्री का अभ्यास करते रहने के लिए कहा है । मैत्री उस प्रेमभरी दया की सम्पूर्णता को कहते हैं जो स्वार्थपूर्ण प्रेम के माधुर्य से रहित रहती है । जिस प्रकार माता अपने पुत्र के लिए अपनी जान का खतरा मोल लेकर अपने पुत्र को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आदमी को चाहिए कि वह सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री का अभ्यास करें । व्यक्ति के उस प्रेम में ऊपर-नीचे, चारों ओर स्वार्थपरता की तनिक भी गंध न हो, उपेक्षा और विरोध का सर्वथा अभाव हो ।

इस प्रकार व्यक्ति निस्वार्थ प्रेम से जिसे बुद्ध ने मैत्री कहा है अहिंसा की समाप्ति कर सकता है तथा सम्पूर्ण विश्व को अहिंसामय बना सकता है । महात्मा बुद्ध के समान ही, कुछ-कुछ प्रेम के भावार्थ को जे. कृष्णमूर्ति ने समझाने का प्रयास किया है परन्तु उनका तरिका थोड़ा मनोवैज्ञानिक लगता है । जैसे कि वे कहते हैं कि जहां निर्भरता व आसक्ति हो, वहां प्रेम नहीं रह सकता है ।⁴ वे कहते कि मनोवैज्ञानिक तौर पर हमारे संबंध निर्भरता पर आधारित होते हैं और इसलिए इनमें प्रेम का नहीं भय का वास होता है और जहां पर भय का वास है वहां आदमी निर्भरता तलाश करता है जो उसे हिंसा की तरफ ले जाती है । उसी प्रकार आसक्ति में भी प्रेम नहीं रहता बल्कि निर्भरता रहती है । कृष्णमूर्ति कहते हैं कि हम उस व्यक्ति से प्रेम करते हैं तो हमारा तात्पर्य है कि उस व्यक्ति पर हमारा अधिकार है । उस अधिकार से ईर्ष्या पैदा होती है क्योंकि व्यक्ति सोचता है कि अगर उसे मैं खो दूँ तो क्या होगा? इसलिए हम उस व्यक्ति या वस्तु पर अपनी पकड़ बनाए रखते हैं । निःसन्देह यह पकड़ और कब्जा ईर्ष्या लाता है, भय लाता है तथा कई तरह के दूसरे द्वन्द्व पैदा करता है । इसलिए यह सब प्रेम नहीं है । कृष्णमूर्ति कहते हैं कि जहां सभी के प्रति मन में करुणा नहीं, दया नहीं, क्षमा नहीं, वहाँ प्रेम भी नहीं है । प्रेम वास्तव में हम तभी कर पाते हैं जब हमारे अन्दर स्वामित्वभाव नहीं होता, हम ईर्ष्यालु नहीं होते, लोभी नहीं होते, जब हमारे में दया व करुणा होती है, जब हम अपनी पत्नी व बच्चों के साथ-साथ अपने पड़ोसी, अपने अभागे नौकरों का भी ख्याल करते हैं ।⁵ इस प्रकार महात्मा बुद्ध के समान ही कृष्णमूर्ति भी निस्वार्थ भावना के बगैर प्रेम के द्वारा अहिंसा को बढ़ावा देने का उपदेश देते हैं

‘परिवर्तनशीलता’ के बिन्दू पर भी महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति में कुछ हद तक समानता देखी जा सकती है । महात्मा बुद्ध कहते हैं कि विश्व की प्रत्येक वस्तु समुन्द्र के जल की तरह चलायमान है । संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो चलायमान न हो । परिवर्तन होना विश्व की लाक्षणिक विशेषता है । इस प्रकार बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अनित्यवाद अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य है चाहे वह जड़ हो या चेतना धम्मपद में कहा गया है जो नित्य तथा स्थायी मालूम पड़ता है वह भी नाशवान है जो महान मालूम पड़ता है वह भी नाशवान है जो महान् मालूम पड़ता है, उसका भी पतन है ।⁶ क्षणिकवाद में प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षममात्र के लिए ही रहता है । उनके अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य ही नहीं बल्कि क्षणभंगुर भी है । अतः व्यक्ति को किसी एक सुख, व्यक्ति, वस्तु से स्थायी लगाव नहीं करना चाहिए । इस लगाव की दूरी ही व्यक्ति को बाद में दुखी बना देती है अर्थात् व्यक्ति उस व्यक्ति, वस्तु या सुख के साथ स्थायी संबंध चाहता है तथा उससे अलगाव निश्चित होता है जो बाद में दुःख की उत्पत्ति का एक कारण बनता है । महात्मा बुद्ध से मिलता-जुलता ही जे० कृष्णमूर्ति का विचार है । वे कहते हैं कि स्थिरता चाहने का अर्थ है - आनन्दमयी वस्तु को अनिश्चित काल तक बनाए रखने एवं दुखदायी वस्तु को शीघ्रातीशीघ्र समाप्त करने की इच्छा करना । हम चाहते हैं कि समाज हमारा नाम जाने और हमारा यह नाम, परिवार और सम्पत्ति के माध्यम से चलता रहे । हम हमारे सम्बन्धों में, हमारे कार्यों में एक प्रकार की स्थिरता चाहते हैं जिसका अर्थ है कि हम एक स्थिर तालाब में स्थायी और सतत जीवन की कामना करते हैं। हम इसमें परिवर्तन नहीं चाहते परन्तु जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि “ऐसा

कुछ नहीं है जीवन अस्थिर है, परिवर्तनशील है । वृक्ष से झड़ जाने वाली पत्तियों के समान जीवन स्थायी नहीं है । यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है । जीवन में सदैव परिवर्तन है तथा मृत्यु है । वास्तविकता तो यह है कि जीवन सरिता के समान है जो अविराम गतिशील है, जो सतत प्रयत्नशील है, बढ़ रहा है ।”⁷ परन्तु मन ऐसा कुछ नहीं चाहता है । मन देखता है कि अस्थिर व परिवर्तनशील अव्यवस्था में रहना खतरनाक व भयपूर्ण है । अतः वह अपने को हमेशा परम्परा, संगठित धर्म, राजनैतिक व सामाजिक सिद्धान्तों से जोड़े रखना चाहता है । हमारा परिवार, हमारा नाम, हमारी सम्पत्ति और हमारा सुख इन सभी चीजों को स्थायी बनाए रखना चाहता है परन्तु ये जीवन के प्रवाह से पृथक हैं । इस प्रकार हम स्थिरता को चाहते हैं तथा इसी मांग के आधार पर संस्कृति की रचना कर लेते हैं । बाद में इन्हीं चीजों के अलगाव होने से भयभीत रहते हैं तथा भय से ईर्ष्या व हिंसा का जन्म होता है । हिंसा को लेकर, पशुओं की हत्या जोकि मांस आहार को लेकर है, समान दिखाई देती है । महात्मा बुद्ध ने भी स्पष्टतः कहा है कि बौद्ध भिक्षु भिक्षा में मांस को भी ग्रहण करके खा सकता है परन्तु वह विशेष इच्छा या मनोरंजन के लिए पशुवध द्वारा न प्राप्त हो । परन्तु पशुबलि तथा मनोरंजन के लिए शिकार का बुद्ध ने विरोध किया है जो अशोक के शिलालेख में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ मिलता है । इसी प्रकार जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि मैंने अपने जीवन में कभी मांस नहीं खाया है परन्तु मनुष्य को जीवित रहना है, अतः उपलब्ध पदार्थों में जो अल्पतम संवेदनशील है, उसी की हत्या की जाए । इस प्रकार मांस आहार को लेकर दोनों के विचारों में बहुत समानता प्रतीत होती है ।

4.2 महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति की अहिंसा के संदर्भ में असमानताएं :

उपरोक्त समानताओं के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति में कुछ असमानताएं भी हैं । सर्वप्रथम हम देखते हैं कि कृष्णमूर्ति कोई सिद्धान्त नहीं बनाते उनकी कोई सैद्धान्तिक प्रतिबद्धताएं नहीं है । दूसरी ओर महात्मा बुद्ध के अपने सिद्धान्त हैं । महात्मा बुद्ध पंचशील, मध्यम मार्ग, दसशील तथ अष्टांग मार्ग, क्षणिकवाद जैसे मार्गों के पक्षधर हैं । वे अपने अनुयायियों को भी इन मार्गों या सिद्धान्तों को स्वीकार करने तथा इनका अनुकरण करने के लिए उपदेश देते हैं तथा कहते हैं कि इन मार्गों पर चलकर ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है । दूसरी ओर जे० कृष्णमूर्ति इस तरह का प्रयास न तो स्वयं करते हैं और न ही दूसरों को करने के लिए प्रेरित करते हैं । कृष्णमूर्ति कहते हैं कि इस प्रकार के वैचारिक प्रयास हमें सत्य से और दूर ले जाते हैं । वे पुनः-पुनः मात्र 'अवलोकन' की बात करते हैं, जिसमें क्रिया और विचार की सभी कोटियों का पूर्ण अभाव है । अपने 'अवलोकन' के परामर्श के इर्द-गिर्द कृष्णमूर्ति शास्त्रीय विवेचनाओं में युक्त किसी सिद्धान्त की रचना नहीं करते जबकि महात्मा बुद्ध के एक सिद्धान्त विशेष हैं जो उनके स्वयं के आध्यात्मिक अनुभव तथा कहीं न कहीं भारत की प्राचीन वैदिक परम्परा की व्याख्या पर आधारित हैं । उक्त अन्तर के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध और जे० कृष्णमूर्ति में जो भौतिक अन्तर है वह आध्यात्मिक प्रगति के स्वरूप को लेकर है । चरम शान्ति प्रेम आनंद, अहिंसा को उपलब्ध होने के बाद समाज में व्याप्त कृपा, विद्वेष और हिंसा के उन्मूलन के लिए व्यक्ति को क्या करना चाहिए, इस प्रश्न का कृष्णमूर्ति के पास कोई विशिष्ट उत्तर नहीं है । दूसरी ओर महात्मा बुद्ध का

चिन्तन के क्षेत्र में जो विशिष्ट अवदान माना जाता है वह इसी प्रश्न के संदर्भ में है कि परमशान्ति प्रेम, अहिंसा और आनन्द को जब व्यक्ति उपलब्ध कर लेता है तब आगे क्या करना चाहिए । महात्मा बुद्ध इसके लिए स्पष्ट कहते हैं कि 'आत्म दीपो भव' बनकर स्वयं बोधि प्राप्त कर के, उसके पश्चात् समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इस भवसागर से पार लगाने की कोशिश करनी है ताकि सभी लोग अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकें । इसके अतिरिक्त यदि और अन्तर की बात करें तो हम देखते हैं कि जे० कृष्णमूर्ति का हिंसा के अध्ययन का स्तर महात्मा बुद्ध की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म प्रतीत होता है । हालांकि दोनों ही विचारकों ने मानसिक, वचन तथा कर्म से किसी दूसरे को कष्ट पहुंचाना को हिंसा की श्रेणी माना है । परन्तु महात्मा बुद्ध जहाँ मन में बुरे विचार को ही हिंसा मानते हैं वहीं जे० कृष्णमूर्ति इसके साथ-साथ किसी दूसरे व्यक्ति को देखकर उसकी उपेक्षा करना तथा उसे देखकर विचित्र चेहरे के भाव बनाना भी हिंसा की श्रेणी में आता है ।

अगर हम महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति के लक्ष्य की बात करें तो महात्मा बुद्ध का लक्ष्य पहले स्वयं व्यक्ति तथा बाद में पूर्ण समाज सुधार का रहा है वहीं दूसरी ओर जे० कृष्णमूर्ति केवल व्यक्तिगत सुधार पर जोर देते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है कि यदि व्यक्ति स्वयं सुधरेगा तो समाज अपने आप ही सुधर जाएगा । महात्मा बुद्ध कहते हैं कि व्यक्ति को पहले आत्म दीपो भव बनकर ज्ञान प्राप्त करना है तथा बाद में उसे दूसरों में बांटना है अर्थात् अहिंसा का ज्ञान स्वयं ले तथा बाद में इसकी उपयोगिता समाज में प्रसारित करें ताकि प्रत्येक व्यक्ति भी इसका ज्ञान प्राप्त कर सकें और पूरा समाज अहिंसक बन जाए परन्तु जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि हम पहले स्वयं तो हिंसामुक्त होकर देखें, बाद

में हम क्या करेंगे, व या नहीं करेंगे, किस विधि से करेंगे यह सब अनुभवकर्ता को स्वयं ही पता चल जाएगा । जैसा कि कृष्णमूर्ति का विचार है कि विभिन्न प्रकार के विचारों, स्मृतियों, आदर्शों और सिद्धान्तों से मन के भरे होने से ही तो समस्त द्वन्द्व संघर्ष और हिंसा जैसी समस्याओं हैं । कृष्णमूर्ति को कथन की सत्यता से इंकार करना कठिन दिखाई देता है । क्षणभर को भी जब हम अपने अन्दर झांकते हैं तो उनका कथन सत्यापित हो जाएगा । क्योंकि महात्मा बुद्ध अनुसार स्वयं ज्ञान प्राप्त व्यक्ति जब यह दूसरे व्यक्तियों में बांटेगा तो वो व्यक्ति उसका केवल अनुकरण करेंगे वे स्वतन्त्र चिंतन या अवलोकन नहीं कर पाएंगे जो कि कृष्णमूर्ति के अनुसार एक प्रकार की हिंसा ही होगी । इस प्रकार जे० कृष्णमूर्ति इस बात का पूर्ण समर्थन करते हैं कि व्यक्ति को समाज को बदलने से पूर्ण स्वयं को अहिंसामय शान्तमय तथा प्रेममय बनाना होगा । यहां पर ध्यान से देखें तो दोनों विचारक अपने-अपने दृष्टिकोण से सही प्रतीत होते हैं । यह सत्य है कि बौद्धिक रूप से सक्षम व्यक्ति अपने आप को स्वयं अनुभव के द्वारा परिवर्तित कर लेगा परन्तु समाज के अन्तर्गत सभी बौद्धिक स्तरों के मनुष्यों का निवास होता है जो स्वयं ही यह सब कुछ कर पाने में सक्षम नहीं होते जो जे० कृष्णमूर्ति बताते हैं, वहां पर महात्मा बुद्ध द्वारा बताया गया मार्ग ही उनकी सहायता करता हुआ प्रतीत होता है । विचार के इस बिन्दू पर दोनों विचारक अपने-अपने दृष्टिकोण से ही प्रासांगिक दिखाई पड़ते हैं । यदि हम संघ बनाने या सिद्धान्तों के प्रतिपादन की बात करते हैं तो यहाँ पर भी दोनों विचारकों में साफ-साफ अन्तर देखा जा सकता है । जहां महात्मा बुद्ध ने अपना स्वयं का संघ बनाया, जिसमें वे उपदेश देते

थे तथा जिनका पालन प्रत्येक बौद्ध अनुयायी के लिए आवश्यक था । महात्मा बुद्ध द्वारा दिए गए पंचशील अष्टांग मार्ग तथा शीलमार्ग पर चलकर ही व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर सकता था । अगर हम इन बातों का जे० कृष्णमूर्ति के दृष्टिकोण से अध्ययन करें तो यह पूर्णतः हिंसा ही होगी । क्योंकि उनके अनुसार इनमें कहीं पर भी स्वतन्त्र चिंतन तो है ही नहीं मात्र अनुकरण है, और अनुकरण करना कृष्णमूर्ति के अनुसार हिंसा है । जे० कृष्णमूर्ति ने स्पष्ट तौर पर कहा है कि वे किसी संघ या समुदाय की स्थापना नहीं करेंगे, न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करेंगे तथा न ही स्वयं को गुरु के रूप में स्थापित करेंगे, इसीलिए शायद उन्होंने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया वहीं महात्मा बुद्ध के राजा से लेकर रंक तक लाखों की मात्रा में शिष्य थे । जे० कृष्णमूर्ति के दृष्टिकोण में संघ समुदाय, सिद्धान्त या मत या गुरु-शिष्य परम्परा ये सभी हिंसा के रूप हैं । इस प्रकार इस विचार को लेकर दोनों विचारकों के मत में भारी अन्तर है ।

यदि ध्यान के विचार को लेकर दोनों विचारकों का अध्ययन किया जाए तो दोनों में बहुत असमानता दिखाई पड़ती है । भगवान बुद्ध ने ध्यान योग को बहुत अधिक महत्त्व दिया । त्रिपिटक में हम पाते हैं कि महात्मा बुद्ध जब कभी भी थोड़ा समय खाली पाते थे तो तभी एकान्त में ध्यान लगा देते थे, ध्यानस्थ हो जाते थे, समाधिस्थ हो जाते थे । बौद्ध भिक्षुओं की दिनचर्या में ध्यान तथा समाधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यान का अर्थ है - एक विषय पर चिन्तन जिसका मुख्य उद्देश्य है - निर्वाण की प्राप्ति करना । महात्मा बुद्ध सदैव ध्यान या समाधि की प्रशंसा करते हैं । वे कहते हैं कि जो ध्यानयोगी है उसका मन स्वस्थ

एवं प्रसन्न रहता है, उसे ही समाधि सिद्धी होती है, ध्यान होने से कर्म प्राप्त होते हैं जिससे वह परमपद प्राप्त करता है जो दुर्लभ, शान्त, अजर और अमर है,⁸ जबकी जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि योग एकाग्रता है और एकाग्रत बहीस्करण है । किसी एक विचार को चुन कर उस पर एकाग्रचित होकर आप प्रतिरोध की दिवार खड़ी कर लेते हैं और इस प्रकार आप सभी दूसरे विचारों से बचते हैं, जिसे प्राय ध्यान कहा जाता है वह प्रतिरोध का संवर्धन है उनमें अपनी इच्छा के किसी विचार पर पूरी तरह से एकाग्र हुआ जाता है । जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं परन्तु आप यह चुनाव करते क्यों है? आप क्यों कहते हैं कि यही विचार अच्छा है, सत्य है, महान है और बाकी विचार ऐसे नहीं है । स्पष्ट है कि यह चुनाव सुख पर, पुरस्कार पर या उपलब्धि पर आधारित है, यह भी हो सकता है कि यह चुनाव व्यक्ति की संस्कारबद्धता एवं परम्परा की प्रतिक्रिया हो जोकि एक प्रकार की हिंसा का ही एक रूप है । इसलिए जे० कृष्णमूर्ति कहते हैं कि व्यक्ति चुनाव क्यों करता है बल्कि उसे प्रत्येक विचार का निरक्षण करना चाहिए । प्रतिरोध खड़ा करने के स्थान पर व्यक्ति को केवल एक विचार में केवल एक रूचि में ध्यान लगाने की बजाय प्रत्येक रूचि का, विचार का जैसे-जैसे वह उभरता है, अध्ययन करना चाहिए । कृष्णमूर्ति कहते हैं कि एक का चुनाव तथा बाकी का परित्याग यही वह संघर्ष है जिसमें हम अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं और इस संघर्ष से प्रतिरोध, द्वन्द्व एवं कलह पैदा होता है ।⁹

4.3 निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय में महात्मा बुद्ध तथा जे० कृष्णमूर्ति के अहिंसा सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि दोनों विचारकों की परिस्थितियां, समय घटनाएं एवं सन्दर्भ बेशक ही अलग-अलग रहे हों जिनसे उनकी विचारधारा, कार्यशैली एवं मतों में भिन्नता आ गई हो परन्तु दोनों का लक्ष्य केवल मात्र एक ही रहा - व्यक्ति तथा समाज की हिंसा से मुक्ति । दोनों विचारकों के विचार पढ़ने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि महात्मा बुद्ध ने जहां व्यवहारिकता के द्वारा जन साधारण तक पहुँच बनाने का प्रयास किया है तथा व्यक्ति की दिनचर्या में शामिल तथ्यों में ही सुधार पर जोर दिया है वही जे० कृष्णमूर्ति मनोवैज्ञानिक तरिके से व्यक्ति के मन के अंदर ही बदलाव की बात कर रहे हैं । दोनों विचारकों का लक्ष्य व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण समाज को अहिंसामय बनाने का है । दोनों विचारक हर मनुष्य को एक स्वतन्त्र ईकाई के रूप में मानते हैं, स्वतन्त्र ईकाई का अर्थ है प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र है । हर व्यक्ति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा एक व्यक्ति दूसरे का गुलाम नहीं है । महात्मा बुद्ध ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को अच्छी तरह संयमित करने का उपदेश दिया है । बुद्ध मनुष्य को आंतरिक चेतना को जगाने का उपदेश देते हैं । जब मनुष्य की आंतरिक चेतना जागेगी तो वह पारम्परिक तथा आलौकिक के जाल से मुक्त हो जाएगा तथा मानव अपने बाहरी तथा भीतरी प्रदूषण को नष्ट कर सकेगा । महात्मा बुद्ध की यह आंतरिक चेतना जागरण की बात जे० कृष्णमूर्ति के आत्म अवलोकन का ही दूसरा रूप कहा जा सकता है जिसमें व्यक्ति सजगता से स्वयं का निरीक्षण

करके स्वयं के दोषों को दूर करता है तथा विशुद्धि के मार्ग पर चल कर परम सुख की प्राप्ति करता है । अब क्योंकि व्यक्ति समाज की ही एक ईकाई है, इसलिए जब प्रत्येक व्यक्ति का सम्यक् परिवर्तन होगा तो समाज में परिवर्तन आना स्वाभाविक है । यहां पर महात्मा बुद्ध जे० कृष्णमूर्ति के विचार 'मात्र व्यक्तिगत सुधार' को पीछे छोड़कर आगे बढ़कर समाज के कल्याण की भी बात करते हैं । वे कहते हैं - स्वयं को आनंद तथा शान्ति प्राप्ति के बाद दूसरों को भी इसका मार्ग बताना चाहिए । कृष्णमूर्ति का भी भाव तो बुद्ध के समान ही है, परंतु थोड़ा सैद्धान्तिक जान पड़ता है क्योंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति में स्वयं का निरीक्षण करना सम्भव नहीं हो पाएगा क्योंकि सभी का बौद्धिक स्तर समान नहीं है । अन्त में हम कह सकते हैं कि जैसे विभिन्न धर्मों के सिद्धान्त, पूजा स्थल तथा पूजा पद्धतियां अलग-अलग होती हैं परन्तु लक्ष्य केवल मात्र ईश्वर की प्राप्ति है उसी प्रकार दोनों विचारकों के विचारों में छिटपुट भिन्नता है परन्तु दोनों का लक्ष्य समाज में कल्याण तथा शान्ति की स्थापना करना है ।

संदर्भ सूची :

1. प्रो. पी. लक्ष्मी नरसु, **बौद्ध धर्म का सार**, अनुवादक डॉ. कौमल्यायन भदन्त आनन्द, दिव्यांश पब्लिकशेन, लखनऊ 226017, द्वितीय संस्करण, 2014, पृ. 61
2. जे. कृष्णमूर्ति, **शिक्षा क्या है**, अनुवादक विनय कुमार वैध, राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट नई दिल्ली 11006, प्रथम संस्करण, 2007, पृ. 103
3. प्रो. पी. लक्ष्मी नरसु, **बौद्ध धर्म का सार**, अनुवादक डॉ. कौमल्यायन भदन्त आनन्द, दिव्यांश पब्लिकशेन, लखनऊ 226017, द्वितीय संस्करण, 2014, पृ. 59
4. जे. कृष्णमूर्ति, **आपको अपने जीवन में क्या करना है**, अनुवादक अचलेश चन्द्र शर्मा, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीर गेट नई दिल्ली, 110006, सप्तम संस्करण, 2014, पृ. 171
5. जे. कृष्णमूर्ति, **प्रथम व अन्तिम मुक्ति**, अनुवादक डॉ. दयाल शरण वर्मा, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली 110006, तृतीय आवृत्ति, 2011, पृ. 189
6. प्रसाद सिन्हा हरेन्द्र, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 110006, पंचम संस्करण, 1999, पृ. 121
7. जे. कृष्णमूर्ति, **संस्कृति का प्रश्न**, अनुवादक सुन्दरलाल मल्हारा, कृष्णमूर्ति फाण्डेशन इण्डिया राजघाट कोर्ट वाराणसी, पाचंवा संस्करण 2004, पृ. 135
8. डॉ. महेन्द्र नाथ सिंह, **धम्मपद (बुद्ध के अनमोल वचन)**, मनीष प्रकाशन, बी. एच. यू. वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 133

-
9. जे० कृष्णमूर्ति, *प्रथम व अन्तिम मुक्ति*, अनुवादक डॉ० दयाल शरण
वर्मा, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली 110006, तृतीय आवृत्ति, 2011,
पृ० 11